



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(8): 859-863
www.allresearchjournal.com
Received: 14-02-2016
Accepted: 20-05-2016

डॉ. सविता उपाध्याय

एसो. प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कन्या महाविद्यालय, भूड,
बरेली, एम.जे.पी. रूहेलखंड
विश्वविद्यालय, बरेली,
उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence

डॉ. सविता उपाध्याय

एसो. प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कन्या महाविद्यालय, भूड,
बरेली, एम.जे.पी. रूहेलखंड
विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर
प्रदेश, भारत

काव्य में जीवन मूल्यों का स्वरूप

डॉ. सविता उपाध्याय

सारांश

जीवन-मूल्य का अर्थ जीवन में गुणों की अवधारणा से है जिनसे जीवन समुन्नत एवं कल्याणमय बनता है। जीवन-मूल्य ही जीवन को अर्थवान् एवं उपयोगी बनाते हैं भारतीय संस्कृति के अनुसार "धर्म" का अर्थ है धारण करना [धारणात् धर्मः] अर्थात् जिसे हृदय में धारण किया जाये वही "धारणात् धर्म" है जिससे मानव अन्य प्राणियों में श्रेष्ठ है। यथा नीति वचनों के अनुसार आहार-निद्रा-भय-मैथुन, मानव तथा अन्य प्राणियों में समान हैं, "धर्म" ही मानव को अन्य प्राणियों से अलग करता है-

[आहारनिद्राभयमैथुनञ्च,
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मण हीनः पशुभिर्समानाः।¹

जीवन मूल्य का अभिप्राय है जीवन को गुण गरिमा से मंडित बनाना जिससे वह सार्थक बन सके। धर्मशास्त्रों में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं। यथा-

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधं दशकं धर्मलक्षणम्॥²

धर्म के दस लक्षण (धृति-क्षमा-दम-अस्तेय, शौच-इन्द्रिय निग्रह, धी-विद्या-सत्य और अक्रोध) ही ऐसे मूल्यवान् हैं जिन्हें धारण करना जीवन को श्रेष्ठ और उन्नत बनाना है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामायणम् की रचना कर इन्हीं जीवन मूल्यों को जीवन में चरितार्थ करने की प्रेरणा दी है।

कूट शब्द: जीवन मूल्य, धर्म, जीवन, मानव, व्यक्तित्व, साधना, साहित्य

प्रस्तावना

शास्त्रों की रचना भी जीवन-मूल्यों को विकसित करने के लिए की गई है। क्योंकि मानव जीवन का लक्ष्य है धर्मभावना को विकसित करना, जीवन-मूल्य धर्म का पर्याय है। अतः प्रतिदिन उनके संचय की बात की गई है। यथा-

"मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।

विमुखाः बान्धवाः यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥"³

उक्त मनुस्मृति के श्लोक का अभिप्राय है कि बन्धु-बान्धव तो काठ और मिट्टी के ढेले समान मेरे शरीर को पृथ्वी में गाढ़ कर उल्टे लौट जाते हैं केवल धर्म प्राणी के साथ जाता है। जीवन-मूल्यों के विकास से मानव की सद्गति तथा इनकी उपेक्षा से मानव की अधोगति होती है। यथा-

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बवषम्।

परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं स्वशरीरिणम्॥⁴

अर्थात् तप से पाप को नष्ट करने वाला और धर्म में तत्पर ऐसे देदीप्यमान ब्रह्मस्वरूप पुरुष को धर्म शीघ्र परलोक ले जाता है। "धर्म" से व्यक्तित्व का निर्माण होता है, क्योंकि सद्गुण को धारण करना ही धर्म है।

व्यक्तित्व निर्माण के चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जो जीवन को उदात्त जीवन-मूल्यों से आप्लावित करते हैं क्योंकि मानव जीवन ईश्वर का श्रेष्ठतम् उपहार है। ईश्वर में निहित समस्त दिव्य सम्भावनाएँ इसमें बीजरूप में विद्यमान हैं। हर व्यक्ति कुछ विशिष्ट क्षमताओं को लेकर जन्म लेता है, जो अपनी मौलिकता में उसे अद्वितीय स्थान देने में सक्षम है, जिनकी किसी से तुलना की जरूरत नहीं है। व्यक्तित्व में अन्तर्निहित इन मौलिक क्षमताओं के जागरण एवं विकास में ही व्यक्ति के जीवन की सार्थक सफलता का राज छिपा हुआ है और इनकी चरम एवं परम अभिव्यक्ति में ही उसके जीवन की पूर्णता है, जिसकी अनुभूति उसे गहन तृप्ति, तुष्टि एवं शान्ति से आप्लावित करती है। व परिवेश, समाज एवं समुदाय को धन्य कर देती है।

व्यक्तित्व में अन्तर्निहित असीम क्षमताओं के जागरण एवं विकास की प्रथम सीढ़ी को उपासना कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें असीम सम्भावनाओं का मूर्तरूप पूर्णता के प्रतीक-प्रतिनिधि अपने इष्ट का निर्धारण किया जाता है। सद्गुणों का समुच्चय वह इष्ट ही उपासना में अपना आराध्य बन जाता है। शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द के समग्र एवं चरण संयोग से सम्पन्न सत्ता भी इसे मान सकते हैं। इसी को शास्त्रों में-'सत्यं-शिव-सुंदरम्', सत्-चित्-आनन्द का रूप दिया गया है। संक्षेप में जीवन की चरम सम्भावनाओं के

श्रेष्ठतम एवं दिव्यतम रूप में अपने इष्ट-आराध्य की परिकल्पना ही उपासना का प्रथम चरण है। गायत्री-ब्रह्मा, सीता-राम, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, शक्ति-शिव आदि के रूप में ऐसी ही सर्वांगीण छवि का निर्धारण किया जा सकता है। उपासना का दूसरा चरण-अपने इष्ट-आराध्य के अभिन्न अंश होने की स्पष्ट धारणा है। उपासना के दौरान जप-ध्यान के अन्तर्गत इसी भावना को प्रगाढ़ किया जाता है। अपने इष्ट के साथ घुलने-मिलने एकाकार होने की भावना के साथ यह प्रक्रिया शुरू होती है। निस्संदेह इसमें अपने देहबोध, क्षुद्र स्वार्थ अहं, वासनाओं एवं कामनाओं से सिमटा-सकुचा अस्तित्व इष्ट की दिव्याग्नि में विलीन होने लगता है और उसी के अनुरूप अपनी शुद्ध, बुद्ध एवं स्वतन्त्रता का अस्तित्व रूप आकार लेने लगता है।

अपने इष्ट-आराध्य की सर्वव्यापी दिव्यसत्ता से एकाकार होने की अनुभूति क्रमशः श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा के रूप में व्यक्तित्व का अंग बनने लगती है। श्रद्धा अर्थात्-आदर्शों के प्रति असीम लगाव, प्रलोभन एवं भय के दबाव को सहने एवं निरस्त करने की दृढ़ता। प्रज्ञा अर्थात् समझदारी जिम्मेदारी एवं बहादुरी से युक्त मनोभूमि, जो श्रेष्ठता एवं दिव्यता के पक्ष में निर्णय लेने की सूझ एवं साहस रखती हो। इसे तात्कालिक प्रलोभन एवं भय के बीच दूरदर्शी विवेकशीलता कह सकते हैं और निष्ठा अर्थात् शौर्य, पराक्रम, दृढ़ता, साहस से ओत-प्रोत मनोभूमि; जो बड़े-से-बड़े भय एवं प्रलोभन के बीच भी कर्तव्य की ओर अविचल भाव से गतिशील रहे। उपासना की यह फल श्रुति अस्तित्व में ओज, तेज एवं वर्चस के रूप में भी व्यक्त की जा सकती है। स्थूल शरीर बलवान, मन ज्ञानवान और अंतःकरण साहसी एवं प्रीतिवान बनता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्तित्व पवित्रता, प्रखरता एवं प्रतिभा के अनुदान- वरदानों से संपन्न हो उठता है।

गायत्री उपासना के अन्तर्गत सूर्य मध्यस्थ गायत्री या गुरुसत्ता की छवि का ध्यान और गायत्री मंत्र का जप निर्दिष्ट है। एक सार्वभौम उपासना की पद्धति के रूप में आज यह सबसे उपयुक्त है, किन्तु उपासना की उपर्युक्त वर्णित फलश्रुतियाँ साधना के बिना अधूरी ही बनी रहती है। व्यक्तित्व के निखार में साधना को दूसरा चरण कह सकते हैं। उपासना जहाँ प्रमुखतया भगवान या दिव्यता की, की जाती है, साधना अपने आप से जुड़ी है। यह

अपने अस्तित्व के समस्त छल-छिद्रों, दोष-दुर्गुणों को धोने, माँजने और बन्द करने की प्रक्रिया है। इसी के आधार पर वह संयोग बन पाता है, जो उपासना से प्राप्त अनुदान-वरदानों को ग्रहण धारण कर सके। साधना सजग प्रहरी की भाँति अपने दुर्गुणों से सतत् चलने वाला संघर्ष है। जीवन की दिशा सुनिश्चित करने के बाद इनसे निपटना आसान हो जाता है। समय समय पर कुसंस्कारों का उफान जीवन के लिए गम्भीर चुनौती बन जाता है। किन्तु दिव्य विचारों की सेना इन आधारहीन कुसंस्कारों पर भारी पड़कर इन्हें नष्ट करने का सार्थक प्रयास करती है।

साधक का संकल्प साहस एवं जुझारूपन कुसंस्कारों के हर प्रहार को निरस्त करता है। व्यक्तित्व के निर्माण के लिए अन्य चरण है आराधना, ईश्वर-विश्वास जिसे, कण-कण में निहारने पर मानवीय मूल्यों का सुविकास मानवता के रूप में होता है।

समर्पण की भावना के साथ "इदं न मम" अर्थात् यह सब मेरा नहीं ईश्वर का है व्यक्तित्व का सुविकास करता है। ऐसा योगदान व्यक्तित्व को आन्तरिक रूप से सन्तोष का दिव्यानुदान देता है जिससे आन्तरिक शक्तियाँ जाग्रत होकर मानव को तेजस्विता से भर देती है। तदनन्तर व्यक्तित्व अन्तर्निहित पूर्णता के विकास की ओर तीव्र गति से अग्रसर होता है जिससे परिवारोद्यान से लेकर देशोद्यान तथा विश्वोद्यान भी सुवासित हो जाता है। ऐसा होता है मानवीय मूल्यों के विकास का योगदान, जो आत्मोत्थान का परिचायक है। हमारा साहित्य मानवीय मूल्यों के विकास का दस्तावेज है जो जीवन को जीवन बनाने की प्रेरणा देता है।

आदिकालीन रासों साहित्य मानवीय मूल्यों के विकास की प्रेरणा देता है। विषय की दृष्टि से हिन्दी के समस्त रासो ग्रन्थ कथा-प्रधान है। रासो-साहित्य उस युग की परिस्थितियों की देन ही नहीं आवश्यकता भी थी जिससे प्रेरित होकर राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ करके, वीरोल्लास भरे काव्य से वीरों को उत्साहित करते थे। इस काव्य का मूल स्वर शौर्य था। आल्हाखंड की सुप्रसिद्ध पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं यथा -

बारह बरसलै कूकर जिये और तेरह लै जिये सियार।

बरस अठारह क्षत्री जिये आगे जीवन को धिक्कार॥⁵

वीरत्व से भरा आदिकालीन साहित्य सारे हिन्दी साहित्य में ही नहीं विश्व के साहित्य में बेजोड़ है।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग का है। जिसका साहित्य विश्व के इतिहास में अतुलनीय है। तुलसी का युग कबीर वाली क्रान्ति और ओज परक वाणी का इच्छुक था किन्तु तुलसी ने अन्धकार के गर्त में डूबी हुई जनता के समक्ष राम का लोकमंगलकारी रूप प्रस्तुत कर जनमानस में पूर्ण आशा एवं शक्ति का संचार किया। युगदृष्टा तुलसी ने भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न मतों सम्प्रदायों एवं धाराओं का सामंजस्य राम चरितमानस द्वारा कर युग को नव दिशा एवं नूतन गति प्रदान की।

तुलसी का सबसे बड़ा धर्म है समन्वय, राजा और प्रजा का समन्वय, वर्णाश्रम व्यवस्था में समन्वय, ऊँच-नीच कुलों में समन्वय, वैष्णव तथा शैव में समन्वय, निर्गुण तथा सगुण में समन्वय, ज्ञान भक्ति एवं कर्म में समन्वय, द्वैत तथा अद्वैत में समन्वय, सामाजिक जीवन में समन्वय युग-धर्म में समन्वय, वेद और लोक को समन्वय भाव तथा कलापक्ष का समन्वय, भाषागत समन्वय, शैलीगत समन्वयादि उल्लेखनीय हैं। तुलसी ने अपने युग और भविष्य स्वदेश और विश्व व्यष्टि और समष्टि सभी के लिए महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है।

तुलसी का साहित्य मानवीय मूल्यों के उन्नयन की प्रेरणा देता है। यद्यपि हिन्दी साहित्य के समग्र इतिहास में सर्वाधिक आलोचना और वाद-विवाद का शिकार रहा है रीतिकाल। प्रायः रीतिकाल को मात्र श्रृंगार प्रधान काव्य का युग कहा गया है किन्तु सत्य इसके विपरीत है। कोई भी पूर्वकालीन वृत्ति ऐसी नहीं जिसका इस युग में विकास न हुआ हो।

रीतिमय और रीतिमुक्त भक्ति और वीरादि शास्त्रीय और अशास्त्रीय काव्य और गद्यादि सभी प्रकार का रीतिकालीन सर्जन अपने आप को विशिष्ट है जो साहित्य धारा का प्रमुख सोपान है जो मौलिक समावेशों के साथ भारी पीढ़ी को एक सम्पन्न साहित्यिक धरोहर सौंपानों का माध्यम है। इस युग की समस्त रचनायें प्रकारान्तर या

प्रत्यक्ष से मानवीय मूल्यों के विकास की प्रेरणायें देकर जनमानस को आन्दोलित करती है।

हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा का वर्तमान सोपान है आधुनिक-काल जिसमें गद्य की प्रधानता होने के कारण इसे गद्य काल भी कहते हैं। आधुनिक युग अनेक कालों में (भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, प्रसाद-युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, स्वातन्त्र्योत्तर युग, आद्यतन) विभाजित है जिसकी अनेक प्रवृत्तियाँ हैं-राष्ट्रीयता, समाज पक्ष की प्रबलता, नारी का समर्थ रूप व्यक्ति मन का अंकन यथार्थपरता, वादों की प्रधानता तथा शैल्पिक क्रान्ति आदि है।

आधुनिक हिन्दी काव्य युगानुरूप क्रान्ति का है। आज का काव्य व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के लिए स्वदेश से लेकर अन्तर्राष्ट्रीयता तक, मानस लेकर मानवतावाद तक, व्यक्ति मानस से लेकर समाज-मानस तथा अतीत गुणगान से लेकर 'आज' के यथार्थ तक व्याप्त है। वह अपने कृतित्व से समाज का मार्गदर्शन करने की सामर्थ्य रखता है किन्तु उसकी कल्पनायें अर्थहीन नहीं होनी चाहिये।

इस प्रकार कल्पना का अवलम्बन ग्रहण करने वाले साहित्यकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह सीमा के भीतर रहे और यदि कोई कलाकार राम व लक्ष्मण को कोट-पैट तथा सीता व उर्मिला को चुस्त सलवार पहनाता है और राम को दशरथ का पिता कहता है तो वह सत्य की हत्या ही करता है। साहित्यकार की निरंकुशता का तात्पर्य उच्छृंखलता नहीं है, बल्कि अनावश्यक दमन से मुक्ति है और 'कला कला के लिए' का नारा लगाने वाले तथा हाथी दाँत पर केवल मीनाकारी और पच्चीकारी करने वाले कलाकार को स्मरण रखना होगा कि कलाकार का सत्य बच्चे का सत्य नहीं। उसके सत्य में गंभीर मनन, चिंतन, निरन्तर अन्वेषण तथा विशाल अध्ययन की आवश्यकता है। कवि का सत्य उसकी स्वानुभूति के उत्स से फूटकर मधुर अमृतमय रस की वृष्टि करता है। कवि के सत्य में ऐहिक तथा सामूहिक सुख का कलात्मक समन्वय होता है। इसी प्रकार कुछ आलोचकों का कहना है कि कलाकार की कल्पना में सौन्दर्य का आगमन तो स्वाभाविक है पर सत्य का समावेश आवश्यक नहीं है। पर हमारी दृष्टि में कल्पनाजन्य सौन्दर्य में सत्य की

सत्ता अनिवार्य है। क्योंकि निरर्थक कल्पना ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन कर लोक मंगल नहीं कर सकती। पाश्चात्य कवि कीट्स के शब्दों में "The Truth is Beauty and the Beauty is Truth" अर्थात् सत्य सौन्दर्य है और सौन्दर्य सत्य है। इस प्रकार कला का वास्तविक रूप इसी में है कि कला और सत्य परस्पर सहर्ष आलिंगन कर रहे हों। इस सम्बन्ध में श्री सुमित्रानन्दन पंत की निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप,
हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप,
लोक सेवा में शिव अविकार
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार,
दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार,
भावनामय संसार।⁶

सत्य शिव और सुन्दर साहित्य का प्राण है जो उसे जीवित रखता है। क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि साहित्य में सत्य, शिव और सुन्दरम् में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। वास्तव में कवि का सत्य हमारे समाज का ही बल है और वह हमारी प्रवृत्तियों को परिष्कृत करता है, उन्हें अपनी सहज सुधा से सिंचित कर विकसित करता है तथा हर्षपूर्वक जीवनयापन की कला बताता है।

चाहे किसी युग का काव्य हो, मानव में मानवता का विकास करना ही उसका लक्ष्य होता है। वस्तुतः प्रेम जीवन का अंग है। क्योंकि यदि जीवन में प्रेम और सामांजस्य न हो तो जीवन अर्थहीन हो जाता है। प्रेम केवल वासना और श्रृंगार ही नहीं अपितु पवित्र और पारलौकिक भी है। कवि के काव्य का अंग प्रेम-विश्वप्रेम, ईश्वर प्रेम तथा प्राणी प्रेम है जो शत्रु को भी प्रेम करने से नहीं चूकता। काव्य-कलश से छलकते प्रेम के कुछ सुवाच्य उल्लेखनीय हैं-

"परहितं सरिस धर्म नहीं भाई" (तुलसी रामचरित मानस)

साधु ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय (कबीर ग्रन्थावली)

नहि पराग नहि मधुर मधु नहि विकास इह काल।

अलि कलि ही सो विध्यो आगे कौन हवाल।।⁷
(काव्यांजलि, पृ० 127)

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक हैं।
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है।⁸
(मैथिलीशरण गुप्त)

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।⁹
(काव्य संकलन, पृ० 53)

है कौन सा तत्व जो सारे भुवन में व्याप्त है
ब्रह्माण्ड पूरा भी नहीं जिसके लिए पर्याप्त है¹⁰
(माखन लाल चतुर्वेदी, रचनावली, भाग-6, पृ० 32)

हो ताकत पास या मजबूर रहना
बुराई से हमेशा दूर रहना।
अता तेरी है मेरी जिन्दगी को
मुहब्बत के नशे में चूर रहना।¹¹

(महाश्वेता चतुर्वेदी, भीगती पलके-गजले)

वस्तुतः कवि का धर्म मानव मूल्यों के सौन्दर्य की सृष्टि का धर्म है। यदि किसी कवि के काव्य में मानव मूल्यों का आदर्श रूप नहीं है तो वह काव्य अर्थहीन है। काव्य का लक्ष्य है जीवन बाह्य और आन्तरिक रूप से जुड़ना। काव्य जीवन से स्वस्थ संवाद की विशिष्ट शैली है जो मूल्यों के सहारे अपना पथ तय करती है तथा उन मूल्यों के अभिनव सौन्दर्य का निर्माण भी करती है जिससे मानवता का विकास सम्भव होता है।

संदर्भ

1. नीति वचनानि आचार्य रमेश वाचस्पति, प्र० सं० 1992.
2. मनुस्मृति 6/92.
3. मनुस्मृति 4/241.
4. वही, 4/243.
5. आल्हाखंड
6. सुमित्रा नन्दन पन्त की ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी.
7. काव्यांजलि, पृ० 127.
8. मैथिलीशरण गुप्त.
9. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-काव्य संकलन, पृ० 53.
10. माखन लाल चतुर्वेदी-रचनावली, भाग-6, पृ० 32.

11. महाश्वेता चतुर्वेदी-भीगती पलके-गजले.